Journal
of the
Oriental Institute **ISSN: 0030-5324**
M.S. University of Baroda **UGC CARE Group 1**

पतंजलि योग के साधना सिद्धांतों का व्यावहारिक महत्व

रवि शंकर नेवार, शोधार्थी, टांटिया विश्वविद्यालय, श्री गंगानगर, राजस्थान

डॉ. रामदेवा राम आलडिया, निर्देशक एवं एसोसिएट प्राध्यापक, टांटिया विश्वविद्यालय, श्री गंगानगर राजस्थान

सारांश

साधना क्षेत्र में योग का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। भारत की ऋषि संस्कृति में प्राचीनकाल से ही मानव के आध्यात्मिक विकास के लिए विभिन्न योग विधियों की खोज की गई और उन्हें साधना लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु प्रयुक्त किया गया है। इन विधियों में हठयोग, ज्ञानयोग, राजयोग, भक्तियोग, कर्मयोग, तंत्रयोग, मंत्रयोग, लययोग आदि अनेक योग प्रणालियों की परम्परायें प्राप्त होती है। इन विधाओं में राजयोग के रूप में महर्षि पतंजलि के योग का महत्व और प्रचलन सर्वाधिक व्यापक दिखाई पड़ता है। इसकी व्यापकता का मूल कारण है सैद्धांतिक पहलुओं की व्यावहारिकता और उपादेयता है।

महर्षि पतंजलि योग साधना में यौगिक अनुशासनों को चार पादों में - समाधि, साधन, विभूति और कैवल्य रूप में प्रस्तुत किया गया है। इन्हीं पादों में सूत्र रूप में योग के साधना सिद्धांतों एवं उनके व्यावहारिक अभ्यास की प्रक्रियाओं का उल्लेख है। पतंजलि योग साधना का मुख्य उद्देश्य चित्त वृत्तियों का निरोध कर चित्त को अध्यात्म लाभ के अनुकूल बनाना है। इसके सूत्रों में साधना के तीन आयाम है - समाधियोग, क्रियायोग और अष्टांग योग। साधना के लिए अधिकारी भेद के अनुरूप पतंजलि योग में साधना सिद्धांतों को वर्गीकृत कर प्रस्तुत किया गया है। समाधिपाद में वर्णित साधना मार्ग, जिसमें अभ्यास-वैराग्य सम्मिलित है, यह चित्त के उत्तम अधिकारियों के लिए है। इसे समाधियोग भी कहा जाता है। मध्यम कोटि के साधकों के लिए क्रियायोग है। तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान इसके अभ्यास की प्रक्रियायें है। अष्टांग योग - यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि, यह अत्यन्त चन्चल चित्त वाले साधकों के लिए है। पतंजलि योग की उक्त इन्हीं विशिष्टताओं की वर्तमान जीवन में उपादेयता और व्यावहारिकता को उजागर करना इस अध्ययन का ध्येय है।

कुट शब्द - पतंजलि योग, साधना, क्रियायोग, समाधि।

1. अष्टांग योग

पतंजलि योग के साधना सिद्धांतों में अष्टांग योग, क्रियायोग और समाधियोग इन तीनों को मनुष्य की पात्रता के अनुसार महत्वपूर्ण माना गया है। बाह्य जीवन में संतुलन, सामंजस्य और आन्तरिक जीवन में शुद्धि एवं चेतनात्मक विकास के लिए ये साधना सिद्धांत सार्वभौमिक रूप से प्रत्येक के जीवन के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यहाँ तीनों का क्रमशः विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

Journal
of the
Oriental Institute **ISSN: 0030-5324**
M.S. University of Baroda **UGC CARE Group 1**

पंतजलि योग में 'अष्टांग योग'[1] के अन्तर्गत विशेषकर 'बहिरंग योग' की साधना की व्यवहारिक उपादेयता ही व्यक्ति की जीवन की श्रेष्ठता का निर्धारण करती है। जीवन यापन करने के लिये सूत्र के रूप में इसका परिचय होता है और मनुष्य जीवन की श्रेष्ठता (जिसके अन्तर्गत व्यक्तिगत, समाजिक आध्यात्मिक विकास निहित है) ही इसका पुरस्कार है। पहला यम है। ये पांच है- अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह।[2] जैसे- अहिंसा'[3] पालन से जहां करूणा-उदारता-सहदयता आदि आन्तरिक गुणों का विकास होता है वही बाहरी रूप में इससे व्यक्ति के क्षमाशीलता, दयालुता, मित्रता आदि का दर्शन होता है। अहिंसावान व्यक्ति सभी का मित्र एवं स्वयं निर्भय बनता है। 'सत्य'[4] हर कारण के साथ निहित होता है। सभी की यह इच्छा होती है कि फला कार्य के पीछे कौन सा कारण निहित था, अर्थात सत्यता क्या है? इस प्रकार सत्यता के पालन एवं नियम से व्यक्ति स्वयं को नही बचा सकता है क्योंकि अन्ततः उसे सत्य का ही सामना करना पड़ता है। 'अस्तेय'[5] का तात्पर्य है कि झूठ की उम्र थोड़ी होती है अतः हमें इस पर विश्वास नही करना चाहिये। 'ब्रहमचर्य'[6] व्यक्ति की मर्यादा एवं गरिमा को बनाए रखता है। वास्तव में ब्रहमचर्य आध्यात्मि उर्जा को बढाता है और इसका संबंध स्वयं को ज्ञानी नहीं वरन् प्रकाशवान बनाने से है। अपरिग्रह'[7] जमाखोरी, कालाबाजरी अर्थात अनावश्यक संग्रह का विरोध तथा समान वितरण का समर्थन करता है अपरिग्रह भावना के कारण ही दान की भावना होती है। यमों की उपयोगिता सार्वभौमिक है, अर्थात ये जाति, देश काल समय में आबद्ध नहीं है। यमों के पालन का लाभ सामाजिक है।[8]

नियम के रूप में[9] - शौच[10] - शौच का तात्पर्य है जीवन की अन्तः बाह्य शुद्धि करना। जहाँ बाहरी शारीरिक स्वास्थ्य के लिऐ जरूरी है वहीं मानसिक संतुलन के लिये आन्तरिक विचार रूपी शौच आवश्यक है। हदय की पवित्रता के लिए विचारों का सतत् शुद्ध होना आवश्यक है सकारात्मक विचार वाला व्यक्ति ही सभी परिवर्तन परिस्थितियों के साथ सामंजस्य एवं समझ रखता है। संतोष"[11] - प्रकृति एवं परमात्मा से जो प्राप्त है, उसी में संतोषी बने रहना। संतोष से ईष्या द्वेष का शमन होता है तथा व्यक्ति आत्म सम्मानी बनता है। तप[12] - दुःख-सुख, लाभ-हानि, शीत-गर्म, भूख-प्यास को सहते हुये सहज बने रहना तप है। सामान्य जीवन तथा उंचे आदर्शों दोनों के लिए तप की कसौटी में खरा उतरना ही व्यक्ति की क्षमता का परिचय है। संतोष, तितिक्षा, धैय आदि मानसिक संतुलन के आवश्यक तत्व है, तथा तपोबल के गुण। स्वाध्याय[13] - यह स्वयं की अन्तर्चेतना का अध्ययन है। जिज्ञासाओं को शांत करने तथा सतर्क सम्मत समाधान स्वाध्याय के द्वारा ही प्राप्त होता है इसलिए स्वाध्याय को मार्गदर्शक, गुरू मित्र माना जाता है। आजकल विभिन्न अध्ययनों के साथ गुरू शब्द औपचारिक रूप से इसी संदर्भ में जुडा हुआ है। ईश्वरप्रणिधान[14] - ईश्वर के प्रति समर्पण की भावना को व्यक्त करना। दुनिया है तो दुनिया को चलाने वाला भी कोई दिव्य पुरुष (शक्ति) है यह व्यक्ति की आस्था से जुड़ा अंग है जो यह सीख एवं अहसास कराता है कि हमारे हर कार्यों का साक्षी (गवाह) भी है।

आसन[15] - यह शारीरिक स्थिरता और संतुलन की सिद्धि का अभ्यास है। आसनों की उपयोगिता दो रूपों में है - पहला - बैठने के स्थान, वातावरण, समय एवं भावना। दूसरा बैठने की स्थिति, मुद्रा एवं भावना। जैसे साधना

के उद्देश्य से आसन की उपयोगिता स्थिरता है क्योंकि स्थिरता से ही एकाग्रता बनती है। किन्तु शारीरिक कार्य के उद्देश्य से आसन की उपयोगिता सुखात्मक होनी चाहिये तभी भावनापूर्वक कार्य होता है। आसन के अभ्यास से दोनों की प्राप्ति होती है। आजकल आसनों के द्वारा शारीरिक सौन्दर्यता को भी संवारा जा रहा है।

प्राणायाम[16] - पातंजल योग में पूरक, रेचक, कुम्भक के द्वारा श्वास-प्रश्वास की किया को प्राणायाम के लिये बताया गया है। इस विधि से श्वास लेने से श्वास की गति अनुपातिक होती है, श्वास दीर्घ होता है। जिससे शरीर में आक्सीजन का पूर्णतया संचार एवं कार्बन डाइ आक्साइड का पूर्णत निष्कासन होता है। सतर्कता पूर्वक जब यह क्रिया होती है तभी यह लाभ मिलता है। अन्यथा श्वास-प्रश्वास लयबद्ध न होने के कारण भी व्यक्ति मानसिक एवं शारीरिक रूप से अस्थिर रहता है क्योंकि ज्यादातर समय व्यक्ति अपने कार्यों की व्यवस्ता में सर्तकतापूर्वक श्वास-प्रश्वास नहीं कर पाता है ऐसी स्थिति में जहाँ प्रदूषण शरीर में एकत्र होता है वही एनर्जी भी पूरी तरह (अन्तिम कोशिका तक आक्सीजन के रूप में) नहीं प्राप्त हो पाती है। अतः प्राणायाम का अभ्यास इसलिये उपयोगी है।

प्रत्याहार[17] - इन्द्रियों की बाह्य वृत्तियों को अन्तः विषयों की ओर मोड़ना प्राणायाम है। विभिन्न सामाजिक वातावरण में व्यक्ति अपने भाव भंगिमा के द्वारा संतुलन स्थापित करता है। इन्द्रिय नियंत्रण की प्रांसगिकता इसलिए भी उपयोगी है जैसे कही व्यक्ति के मनोभाव संतुलन को व्यक्त करते है तो कही अंसतुलन इसी प्रकार शारीरकि मुद्राए भी सहज असहज वातावरण के लिए उत्तरदायी है। साधनात्मक अर्थ में इन्द्रिय नियंत्रण वह स्थिति है जो मनो निग्रह (मन पर नियंत्रण) को प्रस्तुत करती है। जिससे साधक की यथोचित एकाग्रता बनी रहे।

अन्तरंग योग इसमें अष्टांग योग के शेष तीन आयाम सम्मिलित है। ये तीन धारणा, ध्यान एवं समाधि है।[18] - जिसमें धारणा व ध्यान की व्यवहारिक उपयोगिता मन की एकाग्रता से है। एकाग्र व्यक्ति शान्त दिमाग एवं लगन से कार्य करता है। धारणा एवं ध्यान की ग्राही व्यक्ति चंचल नही होता और हर कार्य के प्रति उसकी सोच निष्पक्ष होती है। निद्रा को समाधि की अवस्था से तुलना करते हुये समझा जा सकता है जैसे निद्रा में व्यक्ति का शरीर आराम करता है किन्तु दिमाग जागृत रहता है और सपनों से जुडता है। निद्रा पूर्ण होने पर व्यक्ति अधिक स्फूर्तिवान महसूस करता है। यह एक सीमित अवस्था एवं स्फूर्त है। वास्तव में समाधि को आध्यात्मिक साधना की पूर्णतम माना गया है। जो कि साधक का व्यक्तिगत अनुभव होता है। जबकि निद्रा एक वृत्ति है जिसे योगमार्ग में निरूद्ध करने के लिये कहा गया है जिससे समाधि के समय निद्रा का भ्रम न हो।

2. क्रिया योग[19]

तप, स्वाध्याय व ईश्वर प्रणिधान को क्रियायोग कहा गया है। इसकी मान्यता है कि व्यक्तिगत जीवन क्रियात्मक रूप का आदर्श है। बिना कार्य जीवन जड है। किया योग का प्रथम अंग तप का संबंध व्यक्ति के जीवन जीने के सिद्धान्त से है। जो सभी के जीवन मे किसी न किसी रूप मे समाहित है। जैसे जहाँ शारीरिक रूप से बलिष्ठ व्यक्ति शारीरिक श्रम से सफल होता है। वही शारीरिक रूप से कमजोर व्यक्ति मानसिक श्रम विवेक बुद्धि से कार्य करता है। यह तप का बाहरी रूप है जिसमें व्यक्ति स्वयं को योग्यवान बनाता है। तप के आन्तरिक रूप में व्यक्ति

स्वयं को साधता हुआ धैर्य सहनशक्ति त्याग संतोष आदि के द्वारा मानसिक रूप से सामर्थ्यवान बनाता है। जिससे सभी स्थितियों मे समायोजन बना रहता है। स्वाध्याय की उपयोगिता के व्यक्ति के जीवन मे आत्म-विश्लेषण या स्वयं के मूल्यांकन से है। जिसके द्वारा व्यक्ति अपने गलत सही का निर्धारण कर सकता है तथा प्रमाणित भी करता है। अतः स्वाध्याय के दो रूप स्पष्ट होते है स्वयं का अध्ययन तथा स्वयं द्वारा अध्ययन। स्वयं का अध्ययन जहाँ स्वयं के गुण दोषों से परिचत कराता है वही स्वयं द्वारा अध्ययन जिज्ञासाओं को समाधान एवं ज्ञान की वृद्धि करता है। ईश्वर प्राणिधन परम सत्ता को समर्पित होने का माध्यम ईश्वर है। इसे ही हम अल्लाह, गौड, वाहेगुरू कहते हैं। लेकिन परम सत्ता एक है। उसके नाम रूप की साधना का हम अपने भावों रूचि एवं ज्ञान के अनुसार कहते हैं। सभी योगों की परम्परा में एक स्वर से सिद्ध किया गया है कि परम तत्व एक है जो निराकार अनादि अनन्त एंव असीमित है। ईश्वर के प्रति समर्पण का तात्पर्य यह है कि उसमें विश्वास होना।

3. अभ्यास वैराग्य[20] अथवा समाधियोग

यह साधना जगत के उच्चस्तरीय साधकों के अभ्यास की प्रक्रियाँ से सम्बन्धित योग है। अभ्यास किसी भी कार्य की शुरूआत अभ्यास की साधना से पूर्ण होती है बिना अभ्यास निपुणता नहीं आती है जितने भी महान व्यक्ति अपने कलाकारी से अमर होते है उनके पीछे अभ्यास की साधना होती है। इसलिए सामान्य से विशिष्ट बनने के लिए अभ्यास की पूर्णता आवश्यक है। योग साधना भी अभ्यास पर टिका है।

वैराग्य - बिना राग के कार्य को पूर्ण करने का अभ्यास यौगिक साधना है। जबकि राग को छोडते रहना, पुराने के स्थान पर नये को महत्व देना जैसे जब प्रतियोंगिता में बहुत कठिनता एवं प्रतिद्वंद्धिता हो तो सिर्फ अभ्यास एवं प्रस्तुति पर ही ध्यान रखने से फल का मोह नही रहता है तो यही रवैया व्यक्ति को सफलता एवं असफलता मिलने पर भी सामान्य रखता है किन्तु यदि फल की ज्यादा आकाक्षा मोह हो तो घातक होता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि समाजिक/व्यवाहारिक जीवन में वैराग्य फल के प्रति संलिप्तता को निषेध करता है।

इस प्रकार उक्त तीनों सिद्धांतों में निहित पातंजल योग की साधना प्रक्रियाओं का वैशिष्ट्य उनकी व्यावहारिकता और उपादेयता के रूप में सामने आता है। निम्न, मध्यम एवं उच्चस्तरीय सोपानों में प्रस्तुत यह साधना सिद्धांत जीवन की समग्रता के बोधक और मार्गदर्शक है। इन्हें अपनाकर कोई भी अपने वर्तमान जीवन की अन्तः बाह्य समस्याओं का समाधान प्राप्त कर सकता है। साथ ही जीवन के परम लक्ष्य की प्राप्ति को भी इसी जन्म में सम्भव कर सकता है। व्यक्तिगत जीवन हो अथवा सार्वजनिक इन साधना सिद्धांतों में सभी स्तर पर संतुलन, समायोजन और पूर्ण विकास का कल्याणकारी मार्ग मौजूद है।

निष्कर्ष

पतंजलि योग के साधना सिद्धांतों में मानव जीवन के समग्र उत्कर्ष का विज्ञान समाहित है। लौकिक और आध्यात्मिक जीवन की परिपूर्णता के लिए यह एक समग्र जीवन दृष्टि और जीवनचर्या का आदर्श प्रस्तुत करता है। स्वास्थ्य संरक्षण एवं जीवन की क्षमताओं के विकास में योग की भूमिका तो महत्वपूर्ण है ही साथ ही आत्मिक एवं

आध्यात्मिक विकास के लिए भी यह सर्वसुलभ और प्रभावी मार्ग है। पतंजलि के योग सिद्धांतों में प्रत्येक साधक की वस्तुस्थिति के अनुरूप साधनाओं तथा यौगिक अभ्यासों का प्रस्तुतिकरण, इस योग को सर्वाधिक व्यावहारिक, उपादेयी और व्यापक बनाता है। साधना जगत के साथ ही सामान्य सांसारिक जीवन में भी पतंजलि योग के साधना सिद्धांतों की समान महत्ता और उपयोगिता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यान समाधयोऽष्टावङ्ग, गानि पा.यो.सू. 2/29
2. अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः पा.यो.सू. 2/30
3. अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्संनिधौ वैरत्यागः पा.यो.सू. 2/35
4. सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम पा.यो.सू. - 2/36
5. अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम् - पा.यो.सू. 2/37
6. ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः पा.यो.सू. 2/38
7. अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्तासम्बोधः पा.यो.सू. - 2/39
8. पा.यो.सू. 2/31
9. शौचसंतोष तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधान नियमाः पा.यो.सू. 2/32
10. शौचात् स्वांगजुगुप्सा परैरसंसर्गः पा.यो.सू. - 2/40
11. संतोषादनुत्तम सुखलाभः पा.यो.सू. 2/42
12. कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः पा.यो.सू. - 2/43
13. स्वाध्यायादिष्ट देवतासम्प्रयोगः पा.यो.सू. 2/44
14. स्माधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानम् पा.यो. सू. 2/45
15. स्थिरसुखमासनम् - पा.यो.सू. 2/46
16. तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोगार्तविच्छेदः प्राणायामः पा.यो.सू. 2/49
17. पा.यो.सू. 2/54
18. पा.यो.सू. 3/1, 2, 3
19. पा.यो.सू. 2/1
20. पा.यो.सू. 1/12